...ष्टि प्रार्थना

तथा

(...भक्ति सागर)

महामण्डलेश्वर श्रीमान् १०८ स्वामी कृष्णानन्द गोविन्दानन्दजी महाराज न्यायवेदान्ताचार्य ...र की दैनिक प्रार्थना को मुमुक्षु हितार्थ लाला खैरातीलाल भाटिया ने प्रकाशित किया।

जनवरी १९६६] मूल्य — नित्यपाठ [प्रति २०००

ओ३म्

श्रीगुरुः शरणं मम

चिरञ्जीव श्री वीरेन्द्रकुमार तथा श्री नन्दिनी के शुभविवाह के शुभावसर पर सस्नेह प्रसादरूप वितरण किया।

आपके शुभचिन्तक स्वामी कृष्णानन्द स्वामी गोविन्दानन्द वाराणसी

२८-११-६९

समष्टि प्रार्थना

तथा

(भक्ति सागर)

महामण्डलेश्वर श्रीमान् १०८ स्वामी कृष्णानन्द गोविन्दानन्दजी महाराज न्यायवेदान्ताचार्य हरिद्वार की दैनिक प्रार्थना को मुमुक्षु हितार्थ लाला खैरातीलाल भाटिया ने प्रकाशित किया।

जनवरी १९६६] मूल्य—नित्यपाठ [प्रति २०००

दो शब्द

"त्वदीयं वस्तु गोविन्द, तुभ्यमेव समर्पये"

यह समष्टि प्रार्थना अपने सुपुत्र चिरंजीवी विजय कुमार तथा अशोक कुमार के यज्ञोपवीत संस्कार के शुभ महोत्सव के उपलक्ष्य में भगवत् प्रीत्यर्थ जिज्ञासु कल्याणार्थ लाला खैरातीलाल भाटिया, (११/५ शक्ति नगर देहली) ने प्रकाशित करवाई।

—स्वामी शान्तानन्द
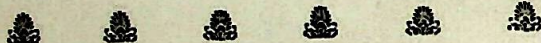
पुस्तक मिलने का पता—

(१) भगवद्धाम, जेसाराम रोड, हरिद्वार।

(२) लाला खैरातीलाल विजय कुमार भाटिया,
११/५, शक्तिनगर, देहली।

प्रकाशक :—
लाला खैरातीलाल भाटिया,
११/५ शक्तिनगर देहली।

मुद्रक—
श्री देवेश्वर शर्मा, निराला मुद्रक,
१४०, साने गुरुजी रोड, बम्बई नं. ११

[समष्टि-प्रार्थना]

तमसो मा ज्योतिर्गमय

असतो मा सद्गमय

मृत्योर्मा अमृतं गमय

अथ शान्ति पाठः

ॐ सह नाववतु । सहनौ भुनक्तु । सहवीर्यं करवावहै । तेजस्विना वधीतमस्तु । मा विद्विषावहै ।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ३ ॥

ॐ शं नो मित्रः । शं वरुणः । शं नो भवत्वर्य्यमा । शं न इन्द्रोबृहस्पतिः । शं नो विष्णुरुरुक्रमः । नमो ब्रह्मणे । नमस्ते वायो । त्वमेव प्रत्यक्षं ब्रह्मासि । त्वामेव प्रत्यक्षं ब्रह्म वदिष्यामि । ऋतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु । तद्वक्तारमवतु । अवतु माम् । अवतु वक्तारम् । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ३ ॥

ॐ आप्यायन्तु ममांगानि, वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि । सर्वं ब्रह्मोपनिषदं, माऽहं ब्रह्म निराकुर्याम्, मा मा ब्रह्म निराकरो दनिराकरणमस्त्व निराकरणं मेऽस्तु । तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु, ते मयि सन्तु ।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ३ ॥

॥ इति शान्तिपाठः ॥

श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे।
हे नाथ नारायण वासुदेव ॥

[आरती]

ॐ जय जगदीश हरे, प्रभु जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के सङ्कट, क्षण में दूर करे ॥ ॐ जय... ॥

जो ध्यावे फल पावे, दुःख बिनसे मन का।
सुख सम्पत्ति घर आवे, कष्ट मिटे तनका ॥ ॐ जय... ॥

मात पिता तुम मेरे, शरण गहूं किसकी।
तुम बिन और न दूजा, आस करूँ जिसकी ॥ ॐ जय... ॥

तुम पूरण परमात्मा; तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर, तुम सबके स्वामी ॥ ॐ जय... ॥

तुम करुणा के सागर, तुम पालन कर्त्ता।
मैं मूरख खल कामी, कृपा करो भर्त्ता ॥ ॐ जय... ॥

तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयामय तुमको मैं कुमति ॥ ॐ जय... ॥

दीनबन्धु दुःखहर्त्ता, ठाकुर तुम मेरे।
अपने हाथ उठाओ, द्वार पड़ा तेरे ॥ ॐ जय... ॥

विषयविकार मिटाओ, पाप हरो देवा।
श्रद्धा भक्ति बढ़ाओ, सन्तन की सेवा ॥ ॐ जय... ॥

शान्ताकारं भुजगशयनम्............।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव...... ॥

अथ शरणाष्टकम्

(शरणार्थी भक्त का भगवान् के प्रति आर्त्तनाद)

ध्येयं वदन्ति शिवमेव हि केचिदन्ये
शक्तिं गणेशमपरे तु दिवाकरं वै ।
रूपैस्तुतैरपि विभासि यतस्त्वमेव
तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ।।१।।

अर्थ—हे शरणागतवत्सल ! शैवलोग जिस परब्रह्म-तत्त्व की शिवरूप से उपासना करते हैं, शाक्तलोग शक्तिरूप से, कुछ लोग गणेश रूप से, और कई एक सूर्य रूप से आपकी उपासना करते हैं। परन्तु वास्तव में आप एक ही उन सब रूपों में विराजमान हैं। अतः हे दीनबन्धो ! मैं आपकी ही शरण में आया हूँ ।।१।।

भक्त की प्रार्थना सुनकर भगवान् बोले, हे सौम्य ! माता, पिता, भाई आदि का सहारा छोड़कर मेरी शरण क्यों आया है ? वे ही तुझे संसार भय से मुक्त करेंगे। यह सुनकर भक्त बोला—

नो सोदरो न जनको जननी न जाया
नैवात्मजो न च कुलं विपुलं बलं वा ।
सन्दृश्यते न किल कोऽपि सहायको मे
तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ! ।।२।।

अर्थ—हे भक्तवत्सल ! इस भयावह संसार में माता-पिता-स्त्री-पुत्र-कुल और महान् बल आदि में से कोई भी मेरा सहायक प्रतीत नहीं होता, मैंने कई बार इनकी शरण ली, परन्तु इन्होंने मेरा साथ ही छोड़ दिया। अतः हे दीनबन्धो ! शरणागत रक्षक ! अब मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥२॥

भक्त के रहस्यपूर्ण शब्दों को सुनकर परमकारुणिक भगवान् भक्त से पूछने लगे—"हे साधक ! अच्छा तो यह बताओ, कि तुमने कौन कौनसे साधनानुष्ठान किये हैं ?" ततः भक्त बोला—

नोपासिता मदमपास्य मया महान्तः
तीर्थानि चास्तिकधिया नहि सेवितानि ।
देवार्चनं च विधिवत् न कृतं कदापि
तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ! ॥३॥

अर्थ—हे भगवन् ! मैंने मद को छोड़कर माता, पिता, गुरु आदि पूज्य महान पुरुषों की सेवा नहीं की है, और ना ही श्रीगङ्गा आदि तीर्थों का श्रद्धा से सेवन किया है और कभी भी शास्त्रोक्त विधि से देवताओं का पूजन भी नहीं किया। अतः मैं सर्व साधन शून्य होने से ही, हे दीनबन्धो ! आपकी शरण में आया हूँ। भक्त का अभिप्राय यह है, कि हे भक्तवत्सल भगवन् ! अजामिल-शबरी-व्याध-गज-गीध आदि से आपने साधनों

भगवान श्री विष्णु

सशंखचक्रं सकिरीटकुण्डलं सपीतवस्त्रं सरसीरुहेक्षणम् ।
सहारवक्षः स्थलकौस्तुभश्रियं नमामि विष्णुं शिरसा चतुर्भुजम् ॥

की चर्चा नहीं की, अपनी दयालुतावश उनका भवबन्धन काट डाला, परन्तु अब आप मेरे से साधन पूछने लगे हैं। हे भगवन्! यदि साधनसामग्री का बल ही होता, तो आपकी शरण ही क्यों लेता? हे पतितपावन! तुलसीदास, गजादि की तरह साधन शून्य मैं भी आपकी शरण में आया हूँ ॥३॥

नहि विद्या नहि बाहुबल नहि खर्चन को दाम।
तुलसी ऐसे पतित की लज्जा राखो राम ॥

भगवान् बोले, अस्तु तुझे क्या कष्ट है? भक्त बोला—

दुर्वासना मम सदा परिकर्षयन्ति
चित्तं शरीरमपि रोगगणा दहन्ति।
संजीवनं च परहस्तगतं सदैव
तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो! ॥४॥

अर्थ—हे भगवन्! दुर्वासनायें मेरे चित्त को सर्वदा सताती हैं, रोगसमूह शरीर को जलाते हैं, और मेरा जीवन सर्वदा पराधीन है। अतः महा दुःखी, असहाय होकर, मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥४॥

पूर्वं कृतानी दुरितानि मया तु यानि
स्मृत्वाऽखिलानि हृदयं परिकम्पते मे।
ख्याता च ते पतितपावनता तु यस्मात्
तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो! ॥५॥

अर्थ—और हे भगवन्! जब मैं अपने पिछले किये हुये पाप कर्मों को स्मरण करता हूँ, तब मेरा हृदय भय से कांप उठता है, परन्तु यह एक हर्ष की बात है कि आपका नाम शास्त्रों में पतितपावन प्रसिद्ध है। अतः हे दीनबन्धो! मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥५॥

दुःखं जरा जननजं विविधाश्च रोगाः
काकश्वसूकर जनि निरये च पातः।
ते विस्मृतेः फलमिदं विततं हि लोके
तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो! ॥६॥

अर्थ—हे भगवन्! आपको भूल जाने से ही इस लोक में जीव को वृद्धावस्था का दुःख, विविध रोग, काक-कूकर-सूकर आदि योनियों का दुःख और नरकों में पतन आदि सब प्रकार के कष्ट प्राप्त होते हैं। अतः हे दीनबन्धो! महा भयभीत होकर अभय होने के लिये ही मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥६॥

भगवान् बोले तो तुम मेरी ही शरण क्यों आये हो? तब भक्त बोला—

नीचोऽपि पापवलितोऽपि विनिन्दितोऽपि
ब्रूयात् तवाहमिति यस्तु किलैकवारम्।
तं यच्छसीश! निजलोकमिति व्रतं ते
तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो! ॥७॥

अर्थ--हे परमदयालु ! यदि आप कहें, कि पापी और नीच के लिये मेरे पास स्थान नहीं है, तो यह भी आपका कहना उचित नहीं बनता, क्योंकि मैंने शास्त्रों में सुना है--कि नीच, पापात्मा, विनिन्दित पुरुष भी यदि आपकी शरण में आकर एक बार भी यह कह देता है कि "तवास्मि" ("मैं आपका हूँ") तो आप उस पापी जीव को भी परम पद प्रदान कर देते हैं, अतः हे दीनबन्धो ! मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥७॥

वेदेषु धर्मवचनेषु तथागमेषु
रामायणेऽपि च पुराण कदम्बके वा ।
सर्वत्र सर्वविधिना गदितस्त्वमेव
तस्मात् त्वमेव शरणं मम दीनबन्धो ! ॥८॥

अर्थ--हे भगवन् ! वेदों में, स्मृतियों में, दर्शन शास्त्रों में, रामायणों में, पुराणों में, एवं सर्व शास्त्रों में सर्व प्रकार से आपकी ही स्तुति की गई है, अतः हे दीनबन्धो ! आपको सर्वथा समदर्शी परमसुहृत् अशरणशरणद समझ कर ही मैं आपकी शरण में आया हूँ ॥८॥

एवं शरणागतवत्सल भगवान् भक्त के प्रेमपूर्ण आर्त्तनाद को श्रवणकर प्रसन्न हो गये, और कण्ठ से लगाकर उसे कृतार्थ कर दिया ।

❀ बोलो भक्त और भक्तवत्सल भगवान् की जय ❀

॥ इति शरणाष्टकम् ॥

एक श्लोकी श्रीविष्णु सहस्रनाम

(युधिष्ठिर-उवाच)

पद्मपत्रविशालाक्ष ! पद्मनाभ ! सुरोत्तम ! ।
भक्ताना मनुरक्तानां, त्राता भव जनार्दन ! ॥

(श्रीभगवानुवाच)

यो मां नामसहस्रेण, स्तोतुमिच्छति पाण्डव ! ।
सोऽहमेकेन श्लोकेन स्तुत एव न संशयः ॥

—卐卐—

नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये, सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते, सहस्रकोटियुगधारिणे नमः ॥

नमः कमलनाभाय, नमस्ते जलशायिने ।
नमस्ते केशवानन्त ! वासुदेव ! नमोऽस्तु ते ॥

वासनाद् वासुदेवस्य वासितं भुवनत्रयम् ।
सर्वभूतनिवासोऽसि, वासुदेव ! नमोऽस्तुते ॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय, गोब्राह्मणहिताय च ।
जगद्धिताय कृष्णाय, गोविन्दाय नमोनमः ॥

आकाशात् पतितं तोयं, यथा गच्छति सागरम् ।
सर्वदेवनमस्कारः केशवं प्रति गच्छति ॥

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः

आत्मषट्कस्तोत्रम्

मनो बुद्ध्यहंकार चित्तानि नाहं, न च श्रोत्रजिह्वे न च घ्राणनेत्रे।
नच व्योमभूमी न तेजो न वायुश्चिदानंदरूपः शिवोऽहंशिवोऽहम्॥

न च प्राणवर्गो न पञ्चानिला मे,
न तोयं न मे धातवो नैव कोशाः।
न वाक् पाणिपादौ न चोपस्थपायू,
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

न मे द्वेषरागौ न मे लोभमोहौ मदो नैव मे नैव मात्सर्यभावः।
नधर्मो नचार्थो नकामो नमोक्षश्चिदानंदरूपःशिवोऽहंशिवोऽहम्॥

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दुःखं
न मंत्रो न तीर्थं न वेदो न यज्ञः।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

न मे मृत्युशंका न मे जातिभेदः पिता नैव मे नैव माता न जन्म।
न बन्धुर्न मित्रं गुरुर्नैव शिष्यश्चिदानंदरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्॥

अहं निर्विकल्पो निराकाररूपो
विभुर्व्याप्य सर्वत्र सर्वेन्द्रियाणि।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्न बन्ध-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम्।

॥ इति आत्मषट्कस्तोत्रम् ॥

श्री सद्गुरु देवजी की आरती

ओं जय सद्गुरुदेवा, स्वामी जय सद्गुरुदेवा ।
योगेश्वर शिव शंकर २, तुम देवन देवा ॥ ओं जय०॥

अज्ञान अन्धेर विनाशी, कलिकल्मषनाशी ।
अविनाशी सुखराशी २, ज्योतिःप्रकाशी ॥ ओं जय०॥

अलखनिरंजन ईश्वर, घट घट के स्वामी ।
सच्चिदानन्दस्वरूपा २, सर्वान्तर्यामी ॥ ओं जय० ॥

तुम मुक्ति के दाता, भक्तन-सुखदाता ।
परमानन्द प्रदाता २, भयत्राता माता ॥ ओं जय० ॥

श्री सद्गुरु देव की आरती, निश दिन जो गावै ।
वसै वैकुण्ठ परम गति २, सुख यश फल पावै ॥ओं जय० ॥

❀ ॐ श्रीरस्तु—शुभमस्तु—शमस्तु ❀

(यजुर्वेद)

अहं ब्रह्मास्मि

(सामवेद) तत्त्वमसि

श्रीगुरुस्तुतिपञ्चकम्

प्रज्ञानं ब्रह्म (ऋग्वेद)

अयमात्मा ब्रह्म
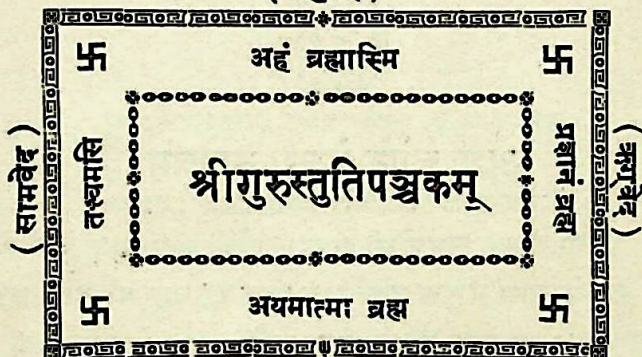
(अथर्ववेद)

नमो जगद्गुरु श्री श्री चन्द्राचार्यचरणकमलेभ्यः

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥१॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुः साक्षान्महेश्वरः ।
गुरुरेव परंब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥२॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम् ।
द्वंद्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधी साक्षिभूतम् ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥३॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥४॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मुक्तिमूलं गुरोः कृपा ॥५॥

अथ चर्पट पंजरी स्तोत्रम्

काशी में एक समय श्री शंकराचार्यजी गंगास्नानं के लिये जा रहे थे, मार्ग में एक वृद्ध पुरुष "डुकृञ्" धातु को याद कर रहा था, उसे देखकर श्री शंकराचार्यजीने यह स्तोत्र पढ़ा था। इसका भाव यह है--कि यद्यपि अन्य शास्त्रों के पढ़ने के लिये प्रथम व्याकरण शास्त्र का पढ़ना उपयोगी है, परन्तु यह सर्वथा अनुचित है कि जीव प्रथम बाल्यावस्था को निष्फल खोकर वृद्धावस्था में व्याकरण पढ़े, फिर और शास्त्रों को पढ़े। मरणासन्न वृद्ध पुरुष को ऐसी अवस्था में तो जितना बन सके, उतना परमेश्वर का भजन ही करना चाहिये। क्योंकि गोविंद भजन ही जीव के परम कल्याण का साधन है।

भज गोविन्दं भज गोविन्दं गोविन्दं भज मूढ़मते।
प्राप्ते सन्निहिते मरणे नहि नहि रक्षति डुकृञ् करणे ॥१॥
भज गोविन्दं

अर्थ--भज गोविन्दं भज गोविन्दं, मूढ़मते! भज गोविन्दं। जब समय मरण का आवेगा, नहिं डुकृञ् पाठ बचावेगा ॥ १ ॥

बालस्तावत् क्रीड़ासक्त–स्तरुणस्तावत् तरुणीरक्तः।
वृद्धस्तावच्चिन्तामग्नः, पारे ब्रह्मणि कोऽपि न लग्नः ॥२॥
भज गोविन्दं

अर्थ--बाल्यावस्था खेल गवावत, होय तरुण तरुणी मन भावत।
वृद्ध भयें चिन्ता वढ़ जावत, परंब्रह्म कोई नहिं ध्यावत ॥ २ ॥

अङ्गं गलितं पलितं मुण्डं, दशनविहीनं जातं तुण्डम् ।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं, तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम् ॥३॥
भज गोविन्दं...

अर्थ---अंग गला शिर श्वेत भया है, दांत बिना मुख बैठ गया है ।
वृद्ध हुआ लाठी गहि चालत, तो भी आशा पिण्ड न त्यागत ॥ ४ ॥

दिनमपि रजनी सायं प्रातः, शिशिरवसन्तौ पुनरायातः ।
कालः क्रीडति गच्छत्यायु, स्तदपि न मुञ्चत्याशावायुः ॥४॥
भज गोविन्दं....

अर्थ--होय दिवस निशि सांझ सवेरा, शिशिर वसंत लगावें फेरा।
खेलत काल घटत है आयु, तदपि न त्यागत आशा वायु ॥ ४ ॥

पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननीजठरे शयनम् ।
इह संसारे खलु दुस्तारे, कृपया पारे पाहि मुरारे ॥ ५ ॥
भज गोविन्दं....

अर्थ--फिर २ जन्म मरण फिर होना, फिर २ जननी जठरमें सोना ।
यह भवसागर दुस्तर भारी, कृपा करियें पार मुरारी ॥ ५ ॥

जटिलो मुण्डी लुंचितकेशः, काषायाम्बर बहुकृतवेषः ।
पश्यन्नपि नहि पश्यति मूढ, उदरनिमित्तं बहुकृतवेषः ॥६॥
भज गोविन्दं...

अर्थ--मुण्डी लुंचित केश जटाधर, वस्त्र रंगत बहु वेष धरत नर।
जानत पर नहिं मूढ़ विचारत, पेट भरत बहु वेष सँवारत ॥६॥

वयसि गते कः कामविकारः, शुष्के नीरे कः कासारः ।
क्षीणे वित्ते कः परिवारो, ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः ॥ ७ ॥
भज गोविन्दं....

अर्थ—आयु नशे क्या काम विकारा, जल सूखे सरमें क्या सारा ।
द्रव्य नशे पर क्या परिवारा, तत्त्व लखे पर क्या संसारा ॥ ७ ॥

अग्रे वह्निः पृष्ठे भानू, रात्रौ चिबुक समर्पित जानुः ।
करतलभिक्षा तरुतलवास-स्तदपि न मुञ्चत्याशापाशः ॥८॥
भज गोविन्दं...

अर्थ—अग्नि अगाड़ी धूप पिछाड़ी, रात करे घुटनों विच डाढ़ी ।
कर धर खाता तरुतल वसता, तो भी आशापाश न तजता ॥८॥

यावद्वित्तोपार्जन शक्त स्तावन्निज परिवारो रक्तः ।
पश्चाद् भवति जर्जरदेहे, वार्त्तां कोऽपि न पृच्छति गेहे ॥९॥
भज गोविन्दं...

अर्थ—धन लानेमें समरथ जब तक, प्रीति करें हैं घरके तब तक ।
पीछे जब तनु जर्जर होई, घरमें बात न पूछे कोई ॥ ९ ॥

रथ्या कर्पट विरचितकन्थः, पुण्यापुण्य विवर्जित पन्थः ।
न त्वं नाहं नायं लोकस्तदपि किमर्थं क्रियते शोकः ॥१०॥
भज गोविन्दं....

अर्थ—चौहट चिथड़न कंथा कीन्हा, पाप अरु पुण्य रहित पथ लीन्हा ।
नहिं तू नहिं मैं नहिं यह लोका, तो किस हेतु कीजिये शोका ॥१०॥

नारी स्तनभरजघननिवेशं, दृष्ट्वा मायामोहावेशम् ।
एतन्मांसवसादि विकारं, मनसि विचारय वारं वारम् ॥११॥
भज गोविन्दं...

अर्थ—नारी पयोधर पीन जघनको, देखत मोह मृषा हो मनको ।
ये चरबी मांसादि विकारा, फिर फिर मनमें करो विचारा ॥११॥

गेयं गीता नाम सहस्रं, ध्येयं श्रीपतिरूप मजस्रम् ।
नेयं सज्जन संगे चित्तं, देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥१२॥
भज गोविन्दं...

अर्थ--सहसनाम जपि गीता गाओ, श्रीपति का नित ध्यान लगावो।
सन्त निकट चित्तको ले जाओ, दीन जनोंमें द्रव्य लुटाओ ॥१२॥

भगवद्गीता किंचिदधीता, गंगाजल लवकणिका पीता।
येनाकारि मुरारे रर्चा, तस्य यमः किं कुरुते चर्चाम् ॥१३॥

भज गोविन्दं...

अर्थ --गीताका कुछ पाठ किया है, थोड़ा गंगा नीर पिया है।
जिसने करी मुरारी अर्चा, क्या! यम करता उसकी चर्चा ॥१३॥

कोऽहं कस्त्वं कुत आयातः, का मे जननी को मे तातः।
इति परिभावय सर्वमसारं, सर्वं त्यक्त्वा स्वप्नविचारम् ॥१४॥

भज गोविन्दं....

अर्थ—को तू, को मैं, कहांसे आयें, कौन पिता, किस मां ने.जायें।
स्वप्ने सम यें सब निर्धारो, सार रहित सब जगत् विचारो ॥१४॥

का ते कान्ता कस्ते पुत्रः संसारोऽयमतीव विचित्रः।
कस्य त्वं कः कुत आयातः, तत्त्वं चिन्तय मनसि भ्रातः ॥१५॥

भज गोविन्दं....

अर्थ—को तव पत्नी, को तव सुत है, यह संसार महा अद्भुत है।
कहांसे आया, है तू किसका, भाई! तत्त्व विचारो इसका ॥१५॥

सुरतटिनी तरुमूलनिवासः, शय्या भूतलमजिनं वासः।
सर्वपरिग्रह भोगत्यागः, कस्य सुखं न करोति विरागः ॥१६॥

भज गोविन्दं....

अर्थ–सुरसरी तरु की जड़में वसना, शय्या भू मृग चर्म पहनना।
भोग तजे नहिं देवे लेवे, किसे विराग नहीं सुख देवे! ॥ १६ ॥

* इति चर्पट पंजरी स्तोत्रम् *

अथ गायत्री मंत्र

"ॐ भूर्भुवः स्व तत् सवितु र्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्" ॥ (यजुर्वेद अ० ३६, मं० ३)

अर्थात् ॐ शब्द से उत्पत्ति, स्थिति और लय कर्त्ता ब्रह्मा, विष्णु, और महेश के त्रिदेवरूप ब्रह्मतत्त्व का मांगलिक निर्देश किया गया है, एवं-त्रिदेवस्वरूप, सच्चिदानन्द, सर्वव्यापक चराचरात्मक समस्त संसार को उत्पन्न करनेवाले उन निरतिशय प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के ध्येय अत्युत्कृष्ट तेज का हम ध्यान करते हैं, ताकि वे हम लोगों की बुद्धियों को सत्कर्मों की ओर प्रेरित करें।

रघुपति राघव राजाराम, पतितपावन सीताराम ।
सीताराम सीताराम, भज प्यारे तू सीताराम ॥
राधेश्याम राधेश्याम, भज प्यारे तूं राधेश्याम ।
जय रघुनन्दन जय घनश्याम, कृष्ण मुरारी राधेश्याम ॥

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते, ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

+ × +

हे पूर्ण परमात्मा, पाप का होवे खात्मा ।
विश्व बने धर्मात्मा, हम सब हैं तेरी आत्मा ॥

॥ इति समष्टि प्रार्थना ॥

अथ अष्टादशश्लोकी गीता

(अर्जुन उवाच)

निमित्तानि च पश्यामि विपरीतानि केशव ॥
न च श्रेयोऽनुपश्यामि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ १॥

अर्थ—हे केशव ! लक्षणों को भी विपरीत देखता हूँ तथा युद्ध में अपने कुल को मार कर कल्याण भी नहीं देखता । (१-३१)

(श्री भगवानुवाच)

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय ॥
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥२॥

अर्थ—हे धनंजय ! आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धिवाला होकर योग में स्थित हुआ कर्मों को कर, यह समत्वभाव ही योगनाम से कहा जाता है । (२-४८)

कर्मेंद्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥३॥

अर्थ—इसलिये जो मूढ़बुद्धि पुरुष कर्मेन्द्रियों को हठ से रोककर, इन्द्रियों के भोगोंको मनसे चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है ।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥४॥

अर्थ—हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ श्रद्धावान् पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है, ज्ञान को प्राप्त होकर तत्क्षण भगवत्प्राप्तिरूप परमशान्ति को प्राप्त हो जाता है। (४-३९)

यतेन्द्रियमनोबुद्धि र्मुनि र्मोक्षपरायणः ।
विगतेच्छाभयक्रोधो यः सदा मुक्त एव सः ॥५॥

अर्थ—जीती हुई हैं इन्द्रियां, मन और बुद्धि जिसकी, ऐसा जो मोक्षपरायण मुनि इच्छा, भय और क्रोध से रहित है, वह सदा मुक्त ही है। (५-२८)

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥६॥

अर्थ—यह दुःखों का नाश करनेवाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करनेवाले का तथा कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करनेवाले का और यथायोग्य शयन करने तथा जागनेवाले का ही सिद्ध होता है। (६-१७)

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥७॥

अर्थ—क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी योगमाया बड़ी दुस्तर है; परन्तु जो पुरुष मेरे को ही निरन्तर भजते हैं, वे इस माया को उल्लंघन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं। (७-१४)

अग्नि र्ज्योतिरहः शुक्लः षण्मासा उत्तरायणम् ।
तत्र प्रयातागच्छन्ति ब्रह्म ब्रह्मविदो जनाः ॥८॥

अर्थ—उन दो प्रकार के मार्गों में से जिस मार्ग में ज्योतिर्मय अग्नि अभिमानी देवता है और दिन का अभिमानी देवता है तथा शुक्लपक्ष का अभिमानी देवता है और उत्तरायण के छ महीनों का अभिमानी देवता है, उस मार्ग में मरकर गये हुये ब्रह्मवेत्ता अर्थात् परमेश्वर की उपासना से परमेश्वर को परोक्षभाव से जाननेवाले योगीजन, उपरोक्त देवताओं द्वारा क्रम से ले गये हुये ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। (८-२४)

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥९॥

अर्थ—तथा और भी मेरी भक्ति का प्रभाव सुन, यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त हुआ मेरे को निरन्तर भजता है, वह साधु ही मानने योग्य है, क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात् उसने भलीप्रकार निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। (९-३०)

यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम्।
असंमूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१०॥

अर्थ—जो मेरे को अजन्मा अर्थात् वास्तव में जन्मरहित और अनादि तथा लोकों का महान् ईश्वर तत्त्व से जानता है, वह मनुष्यों में ज्ञानवान् पुरुष संपूर्ण पापों से मुक्त हो जाता है। (१०-३)

मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः संगवर्जितः ।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव ॥११॥

अर्थ—हे अर्जुन ! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये, सब कुछ मेरा समझता हुआ, यज्ञ, दान और तप आदि संपूर्ण कर्तव्यकर्मों को करनेवाला है और मेरे परायण है, अर्थात् मेरे को परम आश्रय और परम गति मानकर मेरी प्राप्ति के लिये तत्पर है तथा मेरा भक्त है अर्थात् मेरे नाम, गुण, प्रभाव और रहस्य के श्रवण, कीर्तन, मनन, ध्यान और पठनपाठन का प्रेमसहित निष्कामभाव से, निरन्तर अभ्यास करनेवाला है और आसक्तिरहित है अर्थात् स्त्री, पुत्र और धनादि संपूर्ण सांसारिक पदार्थों में स्नेहरहित है और संपूर्ण भूतप्राणियों में वैरभाव से रहित है ऐसा वह अनन्य भक्तिवाला पुरुष मेरे को ही प्राप्त होता है । (११-५५)

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद् ध्यानं विशिष्यते ।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छांतिरनन्तरम् ॥१२॥

अर्थ—क्योंकि मर्म को न जानकर किये हुये अभ्यास से परोक्षज्ञान श्रेष्ठ है और परोक्षज्ञान से मुझ परमेश्वर के स्वरूप का ध्यान श्रेष्ठ है तथा ध्यान से भी, सब कर्मों के फल का मेरे लिये त्याग करना श्रेष्ठ है और त्याग से तत्काल ही परम शान्ति होती है । (१२-१२)

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्धि सर्व क्षेत्रेषु भारत।
क्षेत्र क्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत् तज्ज्ञानं मतं मम ॥१३॥

अर्थ--हे अर्जुन ! तूं सब क्षेत्रों में क्षेत्रज्ञ अर्थात् जीवात्मा भी मेरे को ही जान और क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का अर्थात् विकारसहित प्रकृति का और पुरुष का जो तत्त्वसे जानना है वह ज्ञान है, ऐसा मेरा मत है। (१३-२)

मां च योऽव्यभिचारेण भक्ति योगेन सेवते।
सगुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१४॥

अर्थ--जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तिरूप योग के द्वारा मेरेको निरन्तर भजता है, वह इन तीनों गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके, सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिये योग्य होता है। (१४-२६)

निर्मान मोहा जितसंग दोषा
अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः ।
द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥१५॥

अर्थ--नष्ट हो गया है मान और मोह जिनका तथा जीत लिया है आसक्तिरूप दोष जिनने और परमात्मा के स्वरूप में है निरन्तर स्थिति जिनकी तथा अच्छी प्रकार से नष्ट हो गयी है कामना जिनकी, ऐसे वे सुख-दुःख नामक द्वन्द्वों से विमुक्त हुये ज्ञानीजन, उस

अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं। (१५-५)

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ १६॥

अर्थ--जो पुरुष शास्त्रकी विधिको त्यागकर अपनी इच्छासे बर्तता है, वह न तो सिद्धिको प्राप्त होता है और न परमगतिको तथा न सुखको ही प्राप्त होता है।(१६-२३)

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्म विनिग्रहः।
भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते ॥१७॥

अर्थ--तथा मनकी प्रसन्नता और शान्तभाव एवं भगवत्-चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह और अन्तःकरण की पवित्रता ऐसे यह मनसम्बन्धी तप कहा जाता है। (१७-१६)

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥१८॥

अर्थ—इसलिये सर्व धर्मों को अर्थात् संपूर्ण कर्मों के आश्रय को त्यागकर केवल एक मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्माकी ही अनन्यशरणको प्राप्त हो, मैं तेरेको संपूर्ण पापोंसे मुक्तकर दूँगा, तूं शोक मत कर। (१८-६६)

हरि ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
अष्टादश श्लोकी गीता समाप्ता ॥

अथ सप्तश्लोकी गीता

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म, व्याहरन् मामनुस्मरन् ।
यः प्रयाति त्यजन् देहं, स याति परमां गतिम् ॥१॥

अर्थ—जो पुरुष, ॐ ऐसे इस एक अक्षररूप ब्रह्मको उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थस्वरूप मेरे को चिन्तन करता हुआ, शरीर को त्यागकर जाता है, वह पुरुष परमगति को प्राप्त होता है। (८-१३)

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या
जगत् प्रहृष्यत्यनु रज्यते च।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति
सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥२॥

अर्थ—हे अन्तर्यामिन्! यह योग्य ही है, कि जो आपके नाम और प्रभाव के कीर्तन से जगत् अति हर्षित होता है और अनुराग को भी प्राप्त होता है तथा भयभीत हुये राक्षसलोग दिशाओं में भागते हैं और सब सिद्धगणों के समुदाय नमस्कार करते हैं। (११-३६)

सर्वतः पाणिपादं तत्, सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके, सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥३॥

अर्थ--वह सब ओर से हाथ-पैरवाला एवं सब ओर से नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर से श्रोत्रवाला है क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है। (१३-१३)

कविं पुराण मनुशासितार-
मणोरणीयांस मनुस्मरेद्यः ।
सर्वस्य धातार मचिन्त्य रूप-
मादित्य वर्ण तमसः परस्तात् ॥४॥

अर्थ--जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सबके नियन्ता, सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म, सब के धारण-पोषण करनेवाले, अचिन्त्यस्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाशरूप; अविद्या से अति परे, शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा को स्मरण करता है। (वह अवश्य ही उस परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।) (८-९)

ऊर्ध्वमूलमधः शाख, मश्वत्थं प्राहुरव्ययम् ।
छन्दांसि यस्य पर्णानि, यस्तं वेद स वेदवित् ॥५॥

अर्थ--श्रीकृष्ण भगवान् बोले कि हे अर्जुन! आदिपुरुष परमेश्वररूप मूलवाले और ब्रह्मारूप मुख्य शाखावाले जिस संसाररूप पीपल के वृक्षको अविनाशी

कहते हैं तथा जिसके वेद पत्ते कहे गये हैं, उस संसार-रूप वृक्षको जो पुरुष मूलसहित तत्त्व से जानता है, वह वेदके तात्पर्य को जाननेवाला है (१५-२)

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो
मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो
वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥६॥

अर्थ—मैं ही सब प्राणियों के हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित हूँ तथा मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन होता है और सब वेदोंद्वारा मैं ही जानने के योग्य हूँ तथा वेदान्त का कर्ता और वेदों का जानने वाला भी मैं ही हूँ। (१५-१५)

मन्मना भव मद्भक्तो, मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि युक्त्वैव, मात्मानं मत्परायणः ॥७॥

अर्थ—केवल मुझ सच्चिदानन्दघन वासुदेव परमात्मा में ही अनन्य प्रेम से नित्य, निरन्तर, अचल मनवाला हो और मुझ परमेश्वर को ही श्रद्धाप्रेमसहित, निष्कामभाव से नाम, गुण और प्रभाव के श्रवण, कीर्तन, मनन और पठनपाठनद्वारा निरन्तर भजनेवाला हो तथा मेरा (शंख, चक्र, गदा, पद्म और किरीट-कुण्डलादि भूषणों से युक्त पीताम्बर, वनमाला और कौस्तुभमणि-

धारी विष्णुका) मन वाणी और शरीर के द्वारा सर्वस्व अर्पण करके, अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमसे विह्वलता-पूर्वक पूजन करनेवाला हो और मुझ सर्वशक्तिमान् विभूति, बल, ऐश्वर्य, माधुर्य, गम्भीरता, उदारता, वात्सल्य और सुहृदता आदि गुणों से सम्पन्न सबके आश्रयरूप वासुदेव को विनयभावपूर्वक, भक्तिसहित साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम कर इस प्रकार मेरे शरण हुआ तूं आत्मा को मेरे में एकीभाव करके मेरेको ही प्राप्त होवेगा। (९-३४)

गीतासारमिदं नित्यं, प्रातः सायं पठेन्नरः।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो, विष्णुलोकं स गच्छति ॥

हरि ओं तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
सप्तश्लोकी गीता सम्पूर्णा ॥

गीता सार

१—क्यों व्यर्थ चिन्ता करते हो, किससे डरते हो, कौन तुम्हें मार सकता है, आत्मा न पैदा होती है, न मरती है।

२—जो हुआ सो अच्छा हुआ, जो होरहा है सो अच्छा होरहा है, होगा सो अच्छा होगा, तुम भूत की चिन्ता न करो, भविष्य की चिन्ता न करो, वर्तमान चल रहा है।

३—तुम्हारा क्या गया जो रोते हो, तुम क्या लाये थे जो खो दिया, तुमने क्या पैदा किया था जो नाश हो गया, न तुम कुछ लेके आये जो लिया यहीं से लिया, जो दिया यहीं पर दिया, जो लिया इससे लिया, जो दिया इसीको दिया, खाली हाथ आये थे सो खाली हाथ चले, जो आज तुम्हारा है कल किसी औरका होगा तुम इसे अपना समझकर मगन होते हो, बस यही प्रसन्नता तुम्हारे दुःखका कारण है।

४—परिवर्तन संसार का प्राण है, जिसे तुम मृत्यु समझते हो, यही तो जीवन है, एक क्षण करोड़ों के स्वामी होते हो, क्षण में कंगाल हो जाते हो, मेरा, तेरा, छोटा, बड़ा, अपना, पराया, दिल से मिटा दो विचार से मिटा दो, फिर सब तुम्हारे हैं और तुम सबके हो।

५—न यह शरीर तुम्हारा है, न तुम इसके हो, यह आग, पानी, मिट्टी, हवासे बना है, और उन्हींमें मिल जाता है, फिर भी तुम्हारा अस्तित्व स्थिर है फिर तुम क्या हो?

६—तुम अपने आपको सबके पिता को अर्पित करो यही सबसे उत्तम सहारा है। जो उस सहारे को जानता है वह भय, शोक, चिन्ता से मुक्त है।

अथ शिवपञ्चाक्षरस्तोत्रम्

नागेन्द्रहाराय त्रिलोचनाय, भस्माङ्गरागाय महेश्वराय ।
नित्याय शुद्धाय दिगम्बराय, तस्मै "न" काराय नमः शिवाय ॥
मन्दाकिनीसलिलचन्दनचर्चिताय, नन्दीश्वरप्रमथनाथमहेश्वराय
मन्दारपुष्पबहुपुष्पसुपूजिताय, तस्मै "म" काराय नमः शिवाय ॥
शिवाय गौरी वदनाब्जवृन्द, सूर्याय दक्षाध्वरनाशकाय ।
श्रीनीलकंठाय वृषध्वजाय, तस्मै "शि" काराय नमः शिवाय ॥
वसिष्ठकुम्भोद्भव गौतमार्य, मुनीन्द्रदेवार्चितशेखराय ।
चन्द्रार्कवैश्वानरलोचनाय, तस्मै "व" काराय नमः शिवाय ॥
यक्षस्वरूपाय जटाधराय, पिनाकहस्ताय सनातनाय ।
दिव्याय देवाय दिगम्बराय, तस्मै "य" काराय नमः शिवाय ॥

पञ्चाक्षरमिदं स्तोत्रं, यः पठेच्छिवसन्निधौ ।
शिवलोकमवाप्नोति, शिवेन सह मोदते ॥

(अथ शिवनामावलि)

शिव शिवेति शिवेति शिवेति वा
हर हरेति हरेति हरेति वा ।
भव भवेति भवेति भवेति वा
मृड मृडेति मृडेति मृडेति वा ॥

॥ ॐ तत् सत् श्रीशिवार्पणमस्तु ॥

अथ चतुःश्लोकी श्रीमद्भागवत

(श्री भगवानुवाच)

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद्विज्ञान समन्वितम् ।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाणं गदितं मया ॥ ३० ॥
यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः ।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात् ॥ ३१ ॥
अहमेवास मेवाग्रे नान्यद्यत्सदसत्परम् ।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम् ॥ ३२ ॥
ऋतेऽर्थं यत्प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि ।
तद्विद्यादात्मनोमायां यथाऽऽभासो यथा तमः ॥३३॥
यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु ।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम् ॥ ३४ ॥
एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः ।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत्स्यात् सर्वत्र सर्वदा ॥३५॥
एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना ।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित् ॥३६॥
(श्रीमद्भा० २-१०, ३० से ३६ तक)

[एकश्लोकी भागवत]

आदौ देवकी देवगर्भजननं, गोपीगृहे वर्धनम्
मायापूतन जीवताप हरणं, गोवर्धनोद्धारणम् ।
कंसच्छेदन कौरवादिहननं, कुन्तीसुतापालनम्
एतद्भागवतं पुराणकथितं, श्रीकृष्णलीलामृतम् ॥

एकश्लोकी रामायण

आदौ राम तपोवनादिगमनं, हत्वा मृगं काञ्चनम्,
वैदेहीहरणं जटायुमरणं, सुग्रीवसम्भाषणम् ।
बालिनिग्रहणं समुद्रतरणं, लंकापुरीदाहनम्,
पश्चाद् रावणकुम्भकर्णहनन, मेतद्धि रामायणम् ॥

[सर्वरोग निवृत्त्यर्थ द्वादशादित्य नाम]

आदित्यः प्रथमं नाम, द्वितीयन्तु दिवाकरः ।
तृतीयं भास्करः प्रोक्तं, चतुर्थन्तु प्रभाकरः ॥ १ ॥
पञ्चमन्तु सहस्रांशुः, षष्ठं चैव त्रिलोचनः ।
सप्तमं हरिदश्वश्चैवाष्टमं च विभावसुः ॥ २ ॥
नवमं दिनकृत् प्रोक्तं, दशमं द्वादशात्मकः ।
एकादशं त्रयी प्रोक्तं, द्वादश सूर्य एव च ॥ ३ ॥
द्वादशादित्यनामानि, प्रातःकाले पठेन्नरः ।
दुःस्वप्ननाशनं चैव, सर्वदुःखं च नश्यति ॥ ४ ॥
दद्रुकुष्ठ हरं चैव, दारिद्र्यं हरते तथा ।
सर्वतीर्थप्रदञ्चैव, सर्वकाम प्रवर्धनम् ॥ ५ ॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय, भक्त्या नित्यमिदं नरः ।
सौख्य मायुस्तथाऽऽरोग्यं, लभते मोक्षमेव च ॥ ६ ॥

(शुद्धिकरमन्त्र)

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थां गतोऽपि वा ।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

(सूर्य जलप्रदानमन्त्र)

एहि सूर्य सहस्रांशो ! तेजोराशे ! जगत्पते ! ।
अनुकम्पय मां भक्त्या, गृहाणार्घ्यं दिवाकर ! ॥

(तुलसीमन्त्र)

महाप्रसाद जननी, सर्व सौभाग्यवर्धिनी ।
आधिव्याधिहरा नित्यं, तुलसी त्वं नमोऽस्तु ते ॥

(पीपलपूजामन्त्र)

मूलतो ब्रह्मरूपाय, मध्यतो विष्णुरूपिणे ।
अग्रतः शिवरूपाय, पिप्पलाय नमो नमः ॥

(गोग्रासमन्त्र)

सौरभेय्यः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः ।
प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं, गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥

(मृत्युञ्जय – शिवपूजनमन्त्र)

ॐ–त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्, मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

(प्रदक्षिणा करने का मन्त्र)

यानि कानि च पापानि, जन्मान्तरकृतानि च ।
तानि तानि प्रणश्यन्ति, प्रदक्षिणेपदे पदे ॥

(भगवान् को भोग लगाने का मन्त्र)

त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये ।
गृहाण पुरुषो भूत्वा, प्रसीद परमेश्वर ॥

(भोजन करने का मन्त्र)

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्म समाधिना ॥ १ ॥

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥ २ ॥

(पृथ्वीको प्रातः प्रणाम करने का मन्त्र)

समुद्ररशने देवि !, पर्वत स्तनमण्डिते ।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्यं, पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

(प्रातःकाल स्वकरदर्शन मन्त्र)

कराग्रे वसते लक्ष्मीः, करमध्ये सरस्वती ।
करमूले च गोविन्दः प्रभाते करदर्शनम् ॥

(भूतप्रेतबाधानिवृत्त्यर्थं मन्त्र)

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या, जगत् प्रहृष्यत्यनुरज्यते च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति, सर्वे नमस्यन्तिच सिद्धसंघाः ॥

(श्री लक्ष्मी वन्दना)

महालक्ष्मि ! नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं सुरेश्वरि ! ।
हरिप्रिये ! नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं दयानिधे ! ॥

(श्री देवी पूजन)

सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणी नमोऽस्तुते ॥

(पुष्पाञ्जलि देने का मन्त्र)

नाना सुगन्धि पुष्पाणि यथाकालोद्भवानिच ।
पुष्पाञ्जलिर्मया दत्तोगृहाण परमेश्वर ॥

आत्म सुधारक-प्रतिज्ञापत्र

१. प्रातः उठकर प्रभु चिन्तन व आत्म चिन्तन करूंगा।
२. बड़ों का सदा सम्मान करूंगा।
३. यदि किसी को सुख न भी दे सकूं तो दुःख भी नहीं दूंगा।
४. यथा शक्ति आतुर प्राणी की सेवा करूंगा।
५. ऐसा कोई कार्य नहीं करूंगा, जिससे समाज अथवा धर्म की हानि होगी।
६. स्वाध्याय अध्ययन शील बनूंगा।
७. यथा शक्ति (तन, मन, धन से) समाज की सेवा करने की चेष्टा करूंगा।
८. पर धन को मिट्टी के समान त्याज्य एवं परस्त्री को माता समझूंगा (पर पुरुष को पिता सदृश समझूंगी)।
९. अभक्ष्य पदार्थों (मांस, मदिरादि) का भक्षण नहीं करूंगा।
१०. समाज में विषैले तत्वों को फैलाने वाले व्यक्तियों का कभी संग नहीं करूंगा।
११. समाज में फैली कुरीतियों का कभी अनुसरण नहीं करूंगा।

१२. अपने धर्म पर श्रद्धा, विश्वास रखकर ही संसार में विचरूंगा।

१३. सदा सत्य बोलने का प्रयास करूंगा।

१४. मन, कर्म, वाणी से हिंसा नहीं करूंगा।

१५. ब्रह्मचर्य का यथा शक्ति पालन करूंगा।

१६. सदा समदृष्टि (सब में एक ही आत्मा है) रखने की चेष्टा करूंगा।

१७. किसी प्रकार का छिलका अथवा गंदा पदार्थ मार्ग या सार्वजनिक स्थान में नहीं फैंकूंगा।

१८. देवताओं के अथवा और भी किसी प्रकार के अश्लील चित्र घर में नहीं टांगूंगा।

१९. ईश्वर निष्ठा को दृष्टि में रखते हुये अन्तर्मुख एवं अल्पभाषी बनूंगा।

२०. अपनी आय का सौवाँ भाग भगवान् के निमित्त निकालूंगा।

२१. सादेपन में जीवन बिताऊंगा, कभी तड़क भड़क नहीं करूंगा।

२२. चोरी, घूसखोरी, धोखा देही से सदा दूर रहूँगा।

२३. किसी प्रकार की मिलावट नहीं करूंगा।

२४. अधिकार न चाहकर सदा कर्तव्य का पालन करूंगा।

२५. स्वयं सुख से रहते हुये दूसरों को सुख से रहने में सहायता दूंगा, एवं विधि युक्त कर्म करते हुये ईश्वरार्पण करूँगा।

अत्रिमुनि द्वारा श्रीरामस्तुति

नमामि भक्त वत्सलं। कृपालु शील कोमलम् ॥
भजामि ते पदाम्बुजं, अकामिनां स्वधामदम् ॥
निकाम श्याम सुन्दरं, भवाम्बु नाथ मंदरम् ।
प्रफुल्ल कंज लोचनं, मदादि दोष मोचनम् ॥१॥
प्रलंब बाहु विक्रमं, प्रभोऽप्रमेव वैभवम् ।
निषंग चाप सायकं, धरं त्रिलोक नायकम् ॥
दिनेशवंश मंडनं, महेश चाप खंडनम् ॥
मुनींद्र संत रंजनं, सुरारि वृन्द भंजनम् ॥२॥
मनोज वैरिवन्दितं, अजादि देवसेवितम् ।
विशुद्ध बोध विग्रहं, समस्त दूषणापहम् ।
नमामि इंदिरा पतिं, सुखाकरं सतां गतिम् ॥
भजे सशक्ति सानुजं, शचीपति प्रियानुजम् ॥३॥
त्वदंघ्रि मेव ये नराः भजन्ति हीन मत्सराः ॥
पतन्तिनो भवार्णवे, वितर्क वीचि संकुले ।
विविक्त वासिनः सदा, भजन्ति मुक्तये मुदा ॥
निरस्यइंद्रियादिकं प्रयांति ते गतिं स्वकाम् ॥४॥
त्वामेकमद्भुतं प्रभुं, निरीहमीश्वरं विभुम् ॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं, तुरीयमेव केवलम् ।

भजामि भाव वल्लभं, कुयोगिनां सुदुर्लभम् ॥
स्वभक्त कल्प पादपं, समस्त सेव्य मन्वहम् ॥५॥
अनूप रूप भूपतिं, नतोऽहमुर्विजा पतिम् ।
प्रसीद मे नमामि ते पदाब्ज भक्ति देहि मे ।
पठंति ये स्तवं इदं, नरादरेण ते पदम् ॥
व्रजंति नात्र संशयाः त्वदीय भक्ति संयुताः ॥६॥

श्रीकृष्ण-कृपा-कटाक्ष स्तोत्राम्

भजे व्रजेक-मण्डनं समस्त-पाप–खण्डनं
सुभक्त-चित्त-रञ्जनं सदैव नन्द-नन्दनम् ।
सुपिच्छ गुच्छ-मस्तकं सुनाद-वेणु-हस्तकं
अनङ्ग-रङ्ग-सागरं नमामि कृष्ण-नागरम् ॥

मनोज गर्व-मोचनंविशाल-लोल लोचनं
विधूत गोप शोचनं नमामि पद्म लोचनम् ।
करारविन्द भूधरं स्मितावलोक सुन्दरं
महेन्द्र-मान-दारणं नमामि कृष्ण वारणम् ॥

कदम्ब–सूनु–कुण्डलं सुचारु–गण्ड–मण्डलं
व्रजाङ्गनैक - वल्लभं नमामि कृष्ण-दुर्लभम् ।
यसोदया समोदया सगोपया सनन्दया
युतं सुखैक दायकं नमामि गोप-नायकम् ॥

गोविन्द षट्कस्तोत्रम्

गोविन्द मेरी यह प्रार्थना है, भूलूं न मैं नाम कभी तुम्हारा।
निष्काम होके दिन रात गाऊं, गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ।

देहान्तकाले तुम सामने हो, बंसी बजाते मन को लुभाते।
गाता यही मैं तन नाथ त्यागूं, गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति २

प्यारे जरा तो मनमें विचारो, क्या साथ लाये अरु ले चलोगे।
जावे यही साथ सदा पुकारो, गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ३

नारी धरा धाम सुपुत्र प्यारे, सन्मित्रसद्बान्धव द्रव्य सारे।
कोई न साथी हरि को पुकारो, गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ४

नाता भला क्या जग से हमारा, आये यहां क्यों कर क्या रहे हैं।
सोचो विचारो हरि को पुकारो, गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ५

सच्चे सखा हैं हरि ही हमारे, माता पिता शील सुबन्धु प्यारे।
भूलो न भाई दिन रात गाओ, गोविन्द दामोदर माधवेति ॥
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ६

गोपी तन्मयता

माता यशोदा हरि को जगावें, जागो उठो मोहन नैन खोलो।
द्वारे खड़े गोप बुला रहे हैं गोविन्द दामोदर माधवेति ।।
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति १

गोपी दही छाछ बिलों रही हैं, मीठा करे शब्द बड़ा मथानी।
गाती मथानी संग नारी सारी, गोविन्द दामोदर माधवेति ।।
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति २

ले ले करों में निज पिंजरों को, कोई पढ़ाती शुक सारिका को।
गाते यही हैं शुक सारिका भी, गोविन्द दामोदर माधवेति ।।
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ३

बैठी लिये है दुहनी अनोखी, गो दुग्ध काढ़े अबला नवेली।
गो दुग्ध धारा संग गा रही है, गोविन्द दामोदर माधवेति ।।
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ४

धोए किसीने मुख बालकों के, ले गोदमें प्यार करे दुलारे ।।
हे लाल आओ तुम संग मेरे, गोविन्द दामोदर माधवेति।
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ५

कोई जगाती निज लाल को है, जागो दुलारे टुक नैन खोलो।
ये नाम बोलो हरि के सलोने, गोविन्द दामोदर माधवेति ।।
हे कृष्ण ! हे यादव ! हे सखेति, गोविन्द दामोदर माधवेति ६

यह दुनिया कर्म क्षेत्र है, कोई सैर गाह नहीं।
कर्मों के फल के भोग से, कोई बचा नहीं ॥१॥
खुश किस्मती से मिला, चोला यह मानव देह का।
जीती हुई यह बाजी है, इसको हरा नहीं ॥२॥
चौपड़ बिछी है यहां काम क्रोध लोभ मोह की।
खेलेगा गर तूं बाजी यह, बस अब बचा नहीं ॥
धन धान यौवन पुत्र मित्र, जिस पै फूला फिरै है तू।
यह तो भाई आजतक, किसी का साथी बना नहीं ॥४॥
तृष्णा यह तेरी मिटेगी न कभी, और भोग होंगे न कम।
आखिर को तूं ही मिट जायगा, क्यों यह सोचता नहीं ॥५॥
करने को काम धर्म के हैं, तो कर लो आज ही।
कल की किसे खबर है कि तूं होगा भी या नहीं ॥६॥

तजि मनि हरि विमुखन को संग। (टेक)
जिनके संग कुबुद्धि उपजत है, परत भजन में भंग।
कहा होत पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजंग ॥१॥
कागहि कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अंग ॥२॥
पाहन पतित बांस नहिं वेधत रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरी; चढ़त न दूजो रंग ॥३॥

नजरों से देख प्यारे क्या रूप है तुम्हारा ।
अपनेको भूल तन में बाहिर फिरे गंवारा ।।टेक।।
कर में कंकण छिपावे, ढूँढ़न को बाहिर जावे ।
फिरके समीप पावे, मनमें करो विचारा ।।१।।
मृग नाभि में है गन्धि, सूंघ वो घास गंदी ।
दुनियां सभी है अंधी, समझे नहीं इशारा ।।२।।
जिमि दूध के मथन से, मिलता है घी यतन से ।
तिमि ध्यानकी लगन से, परब्रह्म ले निहारा।। ३।।
जड़ जान देह सारी, क्षण भंग दुःख कारी ।
ब्रह्मानन्द निर्विकारी, चेतन स्वरूप न्यारा ।।४।।

मनुआ चेत चेत अब चेत ।
तेरे चेते सब जग चेते, तू क्यों भयो अचेत ।।१।।
दादू चेते मीरा चेती, सदन गया है चेत ।
फिर पाछे पछितायगा, जब चिड़ियां चुग गई खेत।।२।।
सारी उमरिया बिरथा खोई, कीनो न हरि से हेत ।
सुख दुख सब कर्मों वश होवे, को काहेको देत ।।३।।
मीत अमीत को संग न जावे, जब तू चढ़े जनेत ।
रंक 'शहन्शाह' जो जितना दे, उतना ही वो लेत ।।४।।

कौन कुटिल खल कामी मो सम, कौन कुटिल खल कामी ।
जिम तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसो निमक हरामी ।।१।।

भरभर पेट विषय को ध्यायो, जैसो सूकर ग्रामी ॥२॥
पापी कौन बड़ा है मो सम, सब पतितन ते नामी ॥३॥
सूर पतित की कौन गति है, सुनियो श्रीपति स्वामी ॥४॥

पार करेगा नैया रे भज कृष्ण कन्हैया ।
श्याम श्वास भज नन्द दुलारे वही बिगड़े काम सुधारे ।
भक्तों के रखवैया रे भज कृष्ण कन्हैया ॥१॥
अबला को दे शरण न कोई, भरी सभा में द्रौपदी रोई ।
पहुंचे चीर बढ़ैया रे भज कृष्ण कन्हैया ॥२॥
अर्जुन के हित रथ को हाँका, सांवलिया गिरधारी बाँका ।
काली नाग नथैया रे भज कृष्ण कन्हैया ॥३॥
भक्त सुदामा तँदुल लाये, गले लगाकर भोग लगाये ।
कह कर भैया-भैया रे भज कृष्ण कन्हैया ॥४॥
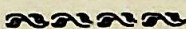
तुम विन मोरी कौन खबर ले गोवर्धन गिरधारी ।
भक्त मीरा की मुशकिल में तो काम तुम्हीं तो आये थे ।
शंकर जी की भक्ति में भी कृपा बनकर छाये थे ।
मोरी भी प्रभु आकर सुध लो, ओ जग के रखवारे ॥१॥
उलझ गये थे आप ही जाकर, दुर्योधन की बातों से ।
द्रौपदी की लाज बचाई, दुःशासन के हाथों से ॥
मुझ अबला की लाज बचाओ शरणागत भयहारी ॥२॥

मिलता है सच्चा सुख केवल, भगवान् तुम्हारे चरणों में
भगवान् तुम्हारे चरणों में ।
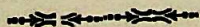
मेरी बेनती है पल पल छिन छिन रहे ध्यान
तुम्हारे चरणों में रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ॥१॥

जिह्वा पर तेरा नाम रहे, नाम रहे, तेरी याद ही प्रातः
शाम रहे, प्रातः शाम रहे, यही काम बस आठों याम रहे ।
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में ॥२॥

चाहे वैरी कुल संसार रहे संसार रहे ।
मेरा जीवन तुझ पे भार रहे, भार रहे ।
चाहे मौत गले का हार रहे,
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में, ॥३॥

चाहे संकट ने मुझे घेरा हो ।
चाहे चारों ओर अंधेरा हो ।
चाहे चित्त ही डग मग मेरा हो ।
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में, ॥४॥

चाहे आग में मुझको जलना पड़े ।
चाहे कांटों पर मुझे चलना पड़े ।
चाहे दर दर पर मुझे रुलना पड़े ।
रहे ध्यान तुम्हारे चरणों में, ॥५॥

साधो सहज समाधि भली ।
गुरु प्रताप जा दिनसे जागी, दिन--दिन अधिक चली ॥१॥

जहँ जहँ डोलौं सो परिक्रमा, जो कछु करौं सो सेवा।
जब सोवौं तब करौं दण्डवत्, पूजौं और न देवा ॥२॥
कहौं सो नाम, सुनौं सो सुमिरन, खाऊँ पियौं सो पूजा।
गिरह (गृह) उजाड़ एक सम लेखौं, भाव मिटावौं दूजा ॥३॥
आँख न मूँदौं, कान न रूँधौं तनिक कष्ट नहिं धारौं।
खुले नैन पहिचानौं हँसि हँसि, सुन्दर रूप निहारौं ॥४॥
शब्द निरंतर से मन लागा, मलिन वासना त्यागी।
ऊठत बैठत कबहुँ न छूटै, ऐसी ताड़ी लागी ॥५॥
कह कबीर यह उनमुनि रहनी, सौ परगट कर भायी।
दुख सुख से कोई परे परम पद, तेहि पद रहा समायी ॥६॥
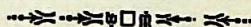
हे जगके पालन हार तेरा खेल है निराला, तेरा खेल है निराला
तुम चक्र सुदर्शनधारी, तेरी लीला सबसे न्यारी।
तेरे रूप अनेकों भगवन्! तू नाम हजारोंवाला ॥१॥
जो तेरा सिमरन करते, भव सागर पार उतरते।
तूने ही सब दुखियों को दुख से है उबारा ॥२॥
तुम तीन लोक के स्वामी, अविनाशी अन्तर्यामी।
मिलता है सब जीवों को तुम से ही उजाला ॥३॥

मनुआ अब हंसले दिल खोल (टेक)
साचा जान जगत् को तूही, क्यों खोता समय अनमोल,
गुरुकृपा से सर्व जगत् की, खुल गई सारी पोल ॥१॥

धोके में ही अब तक पाया, तूं ने दुख अतोल,
विषय भोग ही में करता था, सुख की वृथा टटोल ॥२॥
जब दो घड़ी जगत् से नाता, तब मन भया अडोल,
जी चाहे तो बोल किसी से, जी चाहे मत बोल ॥३॥
बंध मुक्ति सब ही तैं जानी, प्यारे निपट मखोल,
सत्-चित-आनन्द रूप है तेरा, अब बजा खुशी का ढोल ॥४॥

सिमरन बिन गोते खावोगे।

क्या लेकर तुम जग में आये, क्या लेकर तुम जावोगे।
मुट्ठी बांध तुम आये जगत में, हाथ पसारे जावोगे ॥१॥
यह तन है कागज की पुड़िया, बून्द पड़त गल जावोगे।
कहत कबीर सुनो रे सन्तो, जप रामनाम तर जावोगे ॥२॥

तू खुश कर नींद क्यों सोया।

जिन्हां घर झूलते हाथी, हजारों लाख थे साथी।
उन्हां को खा गई माटी, तू खुश कर नींद क्यों सोया ॥१॥
नक्कारह कूच का बाजे, कि मारू मौत का बाजे।
ज्यों श्रावण मेघला गाजे, तू खुश कर नींद क्यों सोया ॥२॥
कहां गये खान मद माते, जो सूरज चांद चमकाते।
न देखा कहां जी वह जाते, तू खुश कर नींद क्यों सोया ॥३॥
जिन्हां घर लाल और हीरे, सदा मुख पान के बीड़े।
उन्हां नूं खा गये कीड़े, तू खुश कर नींद क्यों सोया ॥४॥

जिन्हां घर पालकी घोड़े, जरी जरबफत के जोड़े।
वही अब मौत ने तोड़े, तू खुश कर नींद क्यों सोया ॥६॥
जिन्हां दे बाल थे काले, मलाइयां दूध से पाले।
वह आखिर आग में डाले, तू खुश कर नींद क्यों सोया ॥६॥
जिन्हां संग प्यार था तेरा, उन्हां किया खाकमें डेरा।
न फिर वह करनगे फेरा, तू खुश कर नींद क्योंसोया ॥७॥

गुल न गुलशन तेरा बुलबुल, तू क्यों बैठी दिल लगा।
बाग फानी में लगाना, झूठा तेरा घौंसला ॥१॥
होवेगा वीरान इक दिन, जब खजाँ ने पकड़ा आ।
फिर तो इस झूठे चमन की, झूठी तेरी चह चहा ॥२॥
वह सिकन्दर और दारा, एक दिन थे शहनशाह।
खाक में ऐसे रले, नामो निशाँ तक ना रहा ॥३॥
उड़ चुकी डाली पे डाली, हाय मौत का दारू नहीं।
चल गये लाखों करोड़ों, कर बसेरा जा बजा ॥४॥
फिर कहां अरमान बुलबुल, सर अजल जब आई।
बाग था बेगाना प्यारे, इसमें तेरा कुछ न था ॥५॥

(तेरा जन्म अकारथ जांदा, राम भज बाँवरिया। (टेक)
चेतना है तो चेत ले, निश दिन में प्रानी।
छिन छिन अवधि बिहात है, फुटे घट ज्यों पानी ॥१॥
हरि गुन काहे न गावही, मूरख अज्ञाना।

झूठै लालच लागि कै, नहिं मरन पछाना ॥२॥
अजहूँ कुछ बिगरियो नहीं, जो हरि गुन गावै।
कहु नानक तिह भजन ते, निरभै पद पावै ॥३॥

मनुवा तू क्यों भया दिवाना।
छल प्रपञ्च करत नित मूरख, दुःख को सुखकर माना ॥१॥
माया मोह जन्म के ठगिया, तिनके हाथ विकाना
मुखते धर्म धर्म कहलावत, कर्म करत मन माना ॥२॥
जो प्रभु घट घट की जाने, ताते करत बहाना।
तेहिं ते तू पूछे मार्ग, आप ही जौन भुलाना ॥३॥
या मनुआ के पीछे चल के, सुख का कहाँ ठिकाना।
जो प्रताप सुखद को चीन्हे, सोई परम सयाना ॥४॥

उड़ वे पंखेरू दिन थोड़ा जेहा रह गया।
प्रभु नूं विसार क्यों निमाणा होके बह गया ॥१॥ टेक०
मूर्खा तू पंछी है स्वर्गवाले बाग दा।
जग विच आके बनाया भेष काग दा।
निन्दिया दा मल तेरे करमां विच रह गया ॥२॥ उड़वे-
जाल दीयां रसीयां तू समझ रिशते दारियां।
ममता दा फन्दा तोड़ तू मारके उड़ारियां।
परां वाले पंछी क्यों बेपरा होके बह गया ॥३॥ उड़वे-

सब दिन होत न एक समान

इक दिन राजा हरिश्चन्द्र की, सम्पत्ति मेरु समान।
इक दिन जाये श्वपचगृह सेवत, अम्बर हरत मसान ॥१॥
इक दिन राजा राज युधिष्ठर, अनुचर श्री भगवान्।
इक दिन द्रौपदी नग्न होत है, चीर दुःशासन तान ॥२॥
इक दिन सीता रुदन करत है, महा विपिन उद्यान।
इक दिन रामचन्द्र मिल दोऊ, विचरत पुष्पविमान ॥३॥
प्रकटत है पूर्व की करनी, तज मन शोक अजान।
सूरदास गुण कहां लग वरणों, विधि के अनिक प्रमान ॥४॥

चादर राम नाम रस भीनी।

चादर पहन अभिमान न करना, दो दिन तुझ को दीनी।
मूरख लोग भेद क्या जाने, पल पल मैली कीनी ॥१॥
यह चादर ध्रुवने पहनी, शुकदेवने निर्मल कीनी।
भक्त कबीर ने ऐसी पहनी, ज्यों की त्यों धर दीनी ॥२॥

उठो अब नींद को त्यागो, हुआ बिल्कुल सबेरा है।
हवा बदली जमाने की, तुम्हें आलस ने घेरा है ॥१॥
बड़े बनने लगे तुम से, जो छोटे थे कई दरजे।
तुम्हारी अकल पर कीना, जहालत ने बसेरा है ॥२॥
बड़े तुम बेखबर सोते हो, नहीं जगते जगाने से।
तुम्हारे घर में घुस बैठा अविद्या का लुटेरा है ॥३॥

बुजुर्गों की थी क्या इज्जत, तुम्हारा हाल है अब क्या ।
जरा तो गौर कर सोचो, हुआ यह क्या अन्धेरा है ॥४॥

हरि बिन तेरा मेरे मनुवा, अपना कोई नहीं ।
बाग लगाया महल बनाया, तू कहे घर मेरा रे ।
काल नगारा सिर पर बाजे, लूट लिया तेरा डेरा रे ॥१॥
तीन मास तक रोवे त्रिया, तेरह तक तेरा भाई रे ।
जन्म जन्म की माता रोवे, कर गयों आस पराई रे ॥२॥
ना कोई संगी ना कोई साथी ना कोई सगा सगाई रे ।
लोग कुटंब मरघट के बासी, प्राण अकेला जाई रे ॥३॥
पांच पचीस आये बिरादर, ले चल ले चल होसी रे ।
कहत कबीर बुरा नहीं मानो, यह गति सबकी होसी रे ॥४॥

नजरों से देख प्यारे, ईश्वर है पास तेरे ।
क्यों ढूँढ़ता है वन में, तन में कभी न हेरे ॥(टेक)
पूर्व को कोई जावे, पश्चिम दिशा को धावे ।
प्रभु का न भेद पावे, बिरथा फिरे है फेरे ॥१॥
भूतल आकाश माँही, उसका मुकाम नाहीं ।
दुनिया रही भुलाई, जाने नहीं है नेरे ॥२॥
वह है सभी ठिकाने, घट घट की बात जाने ।
उसको जो दूर माने, वो मूढ़ हैं घनेरे ॥३॥
जग में जगा न कोई, ईश्वर जहाँ न होई ।
ब्रह्मानन्द जान सोई, सुन सत्य वाक्य मेरे ॥४॥

ये तनमन जीवन सुलग उठे, कोई ऐसी आग लगाये रे।
दिन दुगुनी हो विरह वेदना, पलभर चैन न आये रे, कोई–॥१॥
ऐसी लौ हरि नाम की लागे, रह न जाये मेरा नाम।
मन वाणी से राम पुकारूँ, तन से हो भगवत का काम।
हरिका हो तो रह जाये, और मेरा सब चल जाये रे, कोई–॥२॥
जीवन पथ पर थका है राही, मार्ग चला नहीं जाता।
एक तरफ़ जग एक तरफ़ प्रभु, मुझसे चुना नहीं जाता।
हाथ पकड़ कोई मुझ अन्धेको, हरिकी ओर झुकाये रे, कोई–॥३॥
मुझे पर्वत बनना पसन्द नहीं, अभिमान मान हर लो मेरा।
मैं प्रेमनगरका वासी हूँ, गुण ज्ञान ध्यान हर लो मेरा॥
धरतीके आँचल पर मेरी, राख बिखेरी जाये रे, कोई–॥४॥
जीवन की इस कठिन डगर में, तुझे पुकारूं दीनानाथ।
बड़े कठिन साधन से पाया, अब न छोड़ूँ तेरा हाथ॥
चाहे दुनियां दोरंगी, निर्दोष को दोष लगाये रे, कोई–॥५॥

मन मन्दिर में गूँज रहा है, आज तेरा जयकारा राम।
भक्त रिझावन दुष्ट रिसावन, पावन प्रभुजी तुम्हारा नाम॥१॥
धरती अम्बर गूँजे भगवन्, पर्वत सागर गूँजे हो।
गूँजी है प्रभु सभी दिशायें, लोक चराचर गूँजे हो॥
तेरी धुन पर सबकुछ गूँजे, नाच रहा है विश्व तमाम, मन० ॥२॥
कण कण में है नाम की मस्ती; रोम रोम हर्षाया है।

नाचो नाचो रे मन मनयोग, साजन घन बरसाया है ॥
लूटो जितना लूटा जाय, अपना कौड़ी लगे न दाम, मन०॥३॥
तेरी देन बहुत है दाता, करनी देख लज्जाये हों ।
ऐसे ठाकुर (सत्गुरु) घरमें आये, कैसे कर बिठलाये हो ॥
पलदो पलका संगम क्या है, सन्मुख बैठो आठों याम, मन०॥४॥
जा पर तुम रीझो हे लाला, वा पे सब कोई रीझे हो ।
नित्य नित्य यह निर्दोष मिलन हो, ऐसा साधन कीजे हो ॥
अपनी कुटिया सबसे नीची, तेरा ऊँचा भगवद्धाम, मन०॥५॥

तेरे करम से बेनियाज, कौन सी शै मिली नहीं ।
झोली ही मेरी तंग है, तेरे यहां कमी नहीं ॥१॥
राम बगैर जिन्दगी, मौत है जिन्दगी नहीं ।
दिल में शगुफतगी नहीं, रूह में ताजगी नहीं ॥२॥
जीने को जी रहा हूँ मैं, राम तेरे बगैर भी ।
जिन्दगी जिसको कह सकूं, ऐसी तो जिन्दगी नहीं ॥३॥
कब से पुकारता है दिल, कोई भी तो सुनता नहीं ।
मेरा तो इस कायनात में, तेरे सिवा कोई नहीं ॥४॥
माना कि मैं गरीब हूँ, माना कि मैं हक्कीर हूं ।
मुझे न ऐसे रूठिये, जैसे मेरा कोई नहीं ॥५॥
सर बसजूद हूं मगर, अजम में पुखतगी नहीं ।
कायले बन्दगी तो हूं, काबिले बन्दगी नहीं ॥६॥
कौन सुनेगा तेरे सिवा, पेश नजर कभी तो आ ।

सिजदा करूं कैसे बता, जब तू ही सामने नहीं ॥७॥
तीर पे तीर खाय जा, राम से लिव लगाय जा।
उसी के गीत गाय जा, यह इश्क है दिल्लगी नहीं ॥८॥
जखम पे जखम खाके जी, अपने लहू के घूट पी।
आह न कर लबों को सी, यह इश्क है दिल्लगी नहीं ॥९॥
यह भी न हो कि सर, सिजदा में है झुका हुआ।
जिस बन्दगी में होश हो, वह बन्दगी बन्दगी नहीं ॥१०॥
उनकी नजर मिली तो क्या, उनकी नजर फिरी तो क्या।
जिस में रहे इमतियाज, इश्क वह इश्क ही नहीं ॥११॥

लूट लो आकर जो कोई चाहे, शोर मचाऊं गली गली।
हरि नाम के हीरे मोती, मैं बिखराऊं गली गली ॥१॥
जिस जिसने यह लूटे मोती, वे तो मालो माल हुये।
जो माया के बने पुजारी, वे फिर आखिर कंगाल हुये॥
हीरे पैसे वालों को मैं समझाऊं गली गली ॥२॥
हरि नाम के हीरे ० ०
जिन जिन भक्तों ने कैसे-कैसे, हरि का दर्शन पाया है।
और भगवान ने कैसे-कैसे, भक्तों को अपनाया है।
तुलसी मीरां नन्दा का इतिहास सुनाऊं गली गली ॥३॥
हरि नाम के हीरे ० ०
राम कृष्ण और गोविन्द का नाम मैं जपाऊं गली गली।
लूटलो प्यारे बहिनो भाइयो जिसकी किस्मत खुली खुली।४।
हरि नाम के हीरे ० ०

प्रभु तेरी रजामें मेरी रजा, निश दिन तुमको ही ध्याया करूं ॥
जिस हालमें रखो खुश हूं मैं गुनगान तुम्हारा गाया करूं ॥१॥
हरि तुम जानो तुम ही समझो, क्या मुझको शुभकर हितकर है ।
मैं चाकर हूं ठाकुर तुम हो, सब भार प्रभुजी तुम पर है ।
जो कर दो स्वीकार मुझे, न लब पर शिकायत लाया करूं ॥२॥
मुझे राज महल तक पहुंचा दो, या पथ का कंकर रहने दो ।
धन मान बड़ाई सुख दो दाता या दुखी दीन ही बनकर रहने दो ।
अरदास प्रतिइक साँस मेरी, इक दास तुम्हारा कहाया करूं ॥३॥
बस एक अकेले तुम काफी, देखूं भगवन् ! दर और नहीं ।
जो मांगूं सो तुमसे पाऊं, ताकूं झांकू पर ठौर नहीं ॥
मन वांछित फल निर्दोष ही हो, जब जब दर तेरे आया करूं ॥४॥

यह जीवन कांच का बाजा, अचानक टूट जायगा ।
समय की एक ठोकर से यह गिर कर टूट जायगा ॥१॥
कुदरत की उस शक्ति ने, देखा ना जिसे किसी ने,
उस गैबी भी हस्ती ने, बनाया यह बाजा,
जोड़ा है साथ करीने, लगाये नौ महीने,
जड़कर नौ द्वार नगीने, सजाया यह बाजा,
कोई गुरु पीर वाला ही, इसे सुरसे बजायगा, यह..॥२॥
इस बाजे का क्या कहना, दो कान नाक दो नयना,
दान्तों के मोती गहना, सिंगार हैं इस के,
है जीभ सुरीली मैना, और रोम करोड़ों बैना,

श्वासों का चलते रहना, ये तार हैं इस के,
बजेगा तार में तो, लाजमी करतार आयगा, यह.. ॥३॥
यूं पार लगा ले नैय्या, 'सा-से, तू सिमर कन्हैया,
रे-से रट राम रमैय्या, गा-से गोविन्द गा,
आयु है ता-ता थैय्या, मा-से मुरली का बजैय्या,
पा-से पा दर्शन भैय्या, आनन्द कन्द का,
नहींतो धानी सिर धुन-धुनके पछताताही जायगा, यह..॥४॥
यह सात सुरें हों सत की, और ताल बजे उल्फत की,
और गत हो सत्संगत की, फिर शान से बजा,
लय-हो जग की खिदमत की, सुर हो सबकी इज्जत की,
मस्ती हो किसी भगत की, जी जान से बजा,
जो गुर पूछेगा गुरुओंसे,तो गुरु गोविन्द पायगा,यह..॥५॥
हर प्राणी की प्रीतों से, ऋषियों की उन रीतों से,
अमृतमय संगीतों से, सुर कर इस को,
मन मेल के जग जोतों से. प्रीतम की प्रतीतों से,
नत्थासिंह शुभ संगीतों, तूं भर इस को,
नहीं तो कारीगर इसका ही, तुझसे रूठ जायगा, यह.. ॥६॥

मैं कुर्बान तेरे बंसरी बजान वालिया ।
बड़े डुबियां दे आ के बने लाण वालिया ॥१॥
जदों पापियां ने सती दे उतारे चीर वे ।
भैण द्रौपदी पुकारी हुण ते बौढ़ वीर वे ।

झट साड़ियां दा रूप बन आन वालियां ॥२॥
जदों पिता ने प्रह्लाद नूं पहाड़ों सुटियां।
बाहवां खोल के प्यार तेरा जाग उठिया।
उस नूं फुल वाँग गोदीच बिठान वालिया ॥३॥
जदों राणा ने पिटारी विच नाग घलिया।
मीरां गहना जांन ढकनां जदों उथलिया ॥
झट नाग तो नारायण बन जान वालिया ॥४॥
जदों ध्रुव नूं सुतेली मां ने धक्का मारिया।
उसने जंगला चतै नूं पिता कह पुकारिया ॥
आके बच्चे कोलों भुलां बखशान वालिया ॥५॥
अज सैंकड़े सुदामें नें गरीब देश दे।
रोंदे झुगियां च भुखे ने नसीब देश दे।
आजा हिन्द नूं बचा लै हिन्दुस्तान वालिया ॥६॥
कंप कई हो गये सिर्फ तेरी ही उडीक ऐ।
नत्थासिंह केहड़ी तेरे आन दी तारीख ऐ।
आजा गीता वाले कौल नूं निभान वालिया ॥७॥
मैं कुर्बान तेरे बंसरी . . . . ॥

०००००० ००००००

कभी कोई आये यहां कभी कोई जाये
जीव है मुसाफिर और यह जग है सराये रे
दिल क्यों लगाये, कभी कोई . . . ॥१॥

जिस ने भी आ के यहां झण्डे हैं गाड़े
उसके ही मौत ने यूं पांव उखाड़े
कि नामो निशान तक भी नजर ना आये रे
दिल क्यों लगाये, कभी कोई . . . ॥२॥
इतनी है प्यारे तेरी जीवन कहानी
बचपन सवेरा है दोपहर है जवानी
शाम है बुढ़ापा मानो ढलते हैं साये रे
दिल क्यों लगाये, कभी कोई . . . ॥३॥
दादा का मकान बना बना पोता निगाहवान है
यह भी बिचारा चन्द रोज का मेहमान है
पोते का भी पोता आगे मालिक कहाये रे
जग है सराये, कभी कोई . . . ॥४॥
उनके ही नाम आज दुनियां में छाये हैं
नेकी के महल जिन लोगों ने बनाये
नत्थासिंह उन ही के जहान गुन गाये रे
दिल क्यों लगाये, कभी कोई . . . ॥५॥

मैं तो उन सन्तों का दास, जिन्होंने मन मार लिया।
मन मारा तन वश किया सभी भरम भये दूर ।
बाहर से कछु सूझत नाहीं, अन्दर बरसे नूर ॥१॥
जिन्होंने मन मार . . .
आपा मार जगत में बैठे, नहीं किसी से काम ।

उन में तो कछु अन्तर नाहीं, सन्त कहो चाहे राम ॥२॥
जिन्होंने मन मार . . .
प्याला पी लिया नाम का, छोड़ जगत का मोह ।
हम को सतगुरु ऐसे मिल गये, सहज मुक्ति गई होय ॥३॥
जिन्होंने मन मार . . .
नरसी के श्री सतगुरु स्वामी, दिया अमीरस पियये ।
एक बूंद सागर में मिल गई, क्या करेगा यमराये ॥४॥
जिन्होंने मन मार . . .

रघुवर तुमको मेरी लाज ।
सदा सदा मैं सरन तिहारी, तुमहीं गरीब निवाज ॥१॥
पतित उधारन बिरद तुम्हारो, स्रवनन सुनी अवाज ।
हौं तो पतित पुरातन कहिये, पार उतारो जहाज ॥२॥
अघ-खण्डन, दुःख-भंजन जन के, यही तिहारो काज ।
तुलसीदास पर कृपा कीजै, भगति दान देहु आज ॥३॥

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले
हीरा पायो गांठ गठियायो, बार बार वाको क्यों खोले ॥१॥
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले ॥२॥
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले ॥३॥
हंसा पाये मान सरोवर, ताल तलिया क्यों डोले ॥४॥
तेरा साहिब है घट माहीं बाहिर नयनां क्यों खोले ॥५॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहिब मिल गया तिल ओले ॥६॥

जो तू है, सो मैं हूं जो मैं हूं सो तू है।
न कुछ आरज़ू है, न कुछ जुस्तजू है ॥१॥
बसा राम मुझ में, मैं अब राम में हूं।
न इक है न दो है, सदा तू ही तू है ॥२॥
उठा जब कि माया का, पर्दा यह सारा।
किया गम खुशी ने भी, मुझ से किनारा ॥३॥
ज़ुबां को न ताकत, न मन को रसाई।
मिली मुझ को अब, अपनी बादशाही ॥४॥

कृष्ण ने कैसी होरी मचाई, अचरज लखियो न जाई।
असत् सत् कर दिखाई, कृष्णने कैसी होरी मचाई ॥ (टेक)

एक समय श्रीकृष्ण देव के, होरी खेलन मन आई।
एक से होरी मचे नहीं कबहूं, याते करहुं बहुताई ॥
यही प्रभु ने ठहराई, कृष्ण ने कैसी होरी····· ॥१॥
पांच भूत की धातु मिलाकर, अंड पिचकारी बनाई।
चौदह भुवन रंग भीतर कर, नाना रूप धराई ॥
प्रकट भये कृष्ण कन्हाई, कृष्ण ने कैसी होरी····· ॥२॥
पाँच विषयन की गुलाल बना कर, बीच ब्रह्माण्ड उड़ाई।
जिस जिस नयन गुलाल पड़ी वह, सुध बुध सब बिसराई ॥
नहीं सूझत अपनाई, कृष्ण ने कैसी होरी···· ॥३॥
वेदान्त अञ्जन की शलाका बनाकर, जिसने नयनमें पाई।
ब्रह्मानन्द सभी तम नाश्यो, सूझ पड़ी अपनाई ॥
भ्रम की भूल उड़ाई, कृष्ण ने कैसी होरी···· ॥४॥

गाफिल ! तू जाग देख, क्या तेरा स्वरूप है ।
किस वास्ते पड़ा जन्म मरण के कूप है ॥ १ ॥
यह देह गृह नाशवान्, है नहीं तेरा ।
वृथाभिमान जाति में फिरे कहां घिरा ।
तू तो सदा विनाश से परे अनूप है ॥ २ ॥
भेद दृष्टि कीनी जबी दीन हो गया ।
विचार देख, एक तू भूपों का भूप है ॥ ३ ॥
तेरे प्रकाश से शरीर चित्त चेतता ।
तू देह तीन दृश्य को सदा है देखता ।
द्रष्टा नहीं होता कभी दृश्यरूप है ॥४॥
कहते हैं ब्रह्मानन्द ब्रह्मानन्द पाइये ।
इस बात को विचार सदा दिल में लाइये ।
तू देख जुदा कर के जैसा छाया व धूप है ॥५॥

(ज्ञान की रेल)

चेतो चेतो जल्द मुसाफिर, गाड़ी जाने वाली है ।
लाईन किलियर लेनेको, तैयार गार्ड वनमाली है ॥१॥
पांच धातु की रेल है जिसको, मन इंजन ले जाता है ।
इन्द्रिय गण के पहियों से वह खूब ही तेज चलाता है ॥
मील हजारों चलने पर भी, थकने वह नहीं पाता है ।
कठिन वज्र लोहे जैसा होकर, चंचलता दिखलाता है ॥
बड़े गार्ड वनमाली से, होती इसकी रखवाली है ॥२॥ चेतो०

जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया, चार, मुख्य स्टेशन हैं।
आठ पहर इन्हीं में विचरें, रेल सहित यह इंजन है॥
कर्म उपासन ज्ञान टिकट यह, लेता टिकट हरएक जन है।
फर्स्ट सैकंड अरु थर्ड क्लास ले, जितना पल्ले शुभ धन है॥
बैठन पावे हरगिज वह नर जो इस धन से खाली है॥३॥ चेतो०
राहगीरों के ललचाने को, नाना रूप से सजती है।
तीनों घंटिका बाल तरुण, और जरा की इसमें बजती हैं॥
तीसरी घंटी होनेपर झट, जगह को अपनी तजती है।
आते जाते सीटी देकर, रोती और चिल्लाती है॥
धर्म सनातन लाइन छोड़कर, निपट बिगड़नेवाली है॥४॥ चेतो०
पाप पुण्य के भार का बंडल, अक्सर साथ ही रखते हैं।
काम क्रोध लोभादिक डाकू, खड़े राह में तकते हैं॥
स्टेशन स्टेशन पर अनेक, रोगादिक रिपु भटकते हैं।
पुलिसमैन सद्गुरु उपदेशक, रक्षा सबकी करते हैं॥
निर्भय वह ही जाता है, जो होवे पूरा ज्ञानी है॥५॥ चेतो०

प्रीति कर काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतङ्ग करी दीपक सों, आपै प्रान दह्यो॥१॥
अलिसुत प्रीति करी जल सुत सों, करी सुखमाँहि गह्यो।
सारङ्ग प्रीती करी जो नाद सों सन्मुख बान सह्यो॥२॥
हम जो प्रीति करी माधव सों, चलत न कछु कह्यो।
सूरदास प्रभु बिनु दुःख दूनो, नैननि नीर बह्यो॥३॥

दिव्य सन्देश

बहुत गई थोड़ी रही नारायण अब चेत ।
काल चिरैया चुग रही निश दिन आयु खेत ॥१॥
ज्यों तिल माहीं तेल है ज्यों लकड़ी में आग ।
तेरा साईं तोहि में जाग सके तो जाग ॥२॥
ग्रंथ पंथ सब जगतके, बात बतावत तीन ।
राम हृदय, मन में दया तन सेवा में लीन ॥२॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे ताड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं, फल लागें अति दूर ॥४॥
ऐसी बानी बोलिये मन का आपा खोय ।
औरन को शीतल करे आपा शीतल होय ॥५॥
बोली तो अनमोल है जो कोई जाने बोल ।
हृदय तराजू तोलकर तब मुख बाहर खोल ॥६॥
मूर्ख के समझावने ज्ञान गांठ का जाय ।
कोयला होय न ऊजरा कितना साबुन लाय ॥७॥
तन पवित्र सेवा किये, धन पवित्र कर दान ।
मन पवित्र हरि भजन कर होत त्रिविध कल्यान ॥८॥
धिक् मानस तन भक्ति बिन, धिक् मति बिन विवेक ।
विद्या धिक् निष्ठा बिना, धिक् सुख बिन हरि टेक॥९॥
विद्या बल धन रूप यश, कुल सुत वनिता मान ।
सभी सुलभ संसार में दुर्लभ आत्म ज्ञान ॥१०॥

अवगुन कहूँ शराबका आपा अहमक होय।
मानुष से पशुआ करे दाम गांठ का खोय ॥११॥
सोता साधु जगाइये करे नाम का जाप।
ये तीनों सोते भले साकत, सिंह अरु सांप ॥१२॥
कबीर तीन लोक नवखंड में गुरु ते बड़ा कोय।
कर्ता कर ना कर सके गुरु करे सो होय ॥१३॥
राम नाम जपते रहो जब लग घट में प्रान।
कबहुँक दीन दयाल के भनक पड़ेगी कान ॥१४॥
दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये जब लग घट में प्रान ॥१५॥
पानी बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम।
दोनों हाथ उलीचिये तब आवे आराम ॥१६॥
जहाँ काम तहाँ राम नहीं जहाँ राम नहीं काम।
दोनों कबहुँ ना मिले रवि रजनी इक ठांव ॥१७॥
कबीर यह तन जात है सके तो ठौर लगाय।
कै सेवा कर साधुकी कै हरि के गुण गाय ॥१८॥
मर जाऊँ मांगू नहीं अपने तनु के काज।
परमारथ के कारणे मोहि न आवे लाज ॥१९॥
कबीर कलह अरु कल्पना सत-संगति से जाय।
दुःख वहां भग फिरे सुख में रहे समाय ॥२०॥
साईं इतना दीजिये जामें कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ साधु भूखा न जाय ॥२१॥

नारायण परलोक में ये दो आवत काम ।
देना मुट्ठी अन्न की लेना भगवत् नाम ॥२२॥
माया मरी न मन मरा मर मर गये शरीर ।
आशा तृष्णा ना मरी कह गये दास कबीर ॥२३॥
जो तो को कांटा बोये ताहि बोय तू फूल ।
तोकों फूल के फूल हैं वाको हैं त्रिशूल ॥२४॥
जहँ आपा तहँ आपदा जहाँ संशय तहाँ शोग ।
कह कबीर यह क्यों मिटें चारों दीर्घ रोग ॥२५॥
आवत गाली एक है उलटत होय अनेक ।
कहे कबीर नहीं उलटिये वही एक की एक ॥२६॥
नारायण जप योग तप सबसों प्रेम प्रवीन ।
प्रेम हरि को करत है प्रेमी के अधीन ॥२७॥
आया था किस काम को सोया चादर तान ।
सुरत संभाल ऐ गाफिला अपना आप पहिचान ॥२८॥
प्रेम खेल सबसों कठिन, खेलत कोऊ सुजान ।
नारायण बिन प्रेम के कहाँ प्रेम पहिचान ॥२९॥
कथा कीर्तन रात दिन जाके उद्यम येह ।
कह कबीर ता साधु की हम चरनन की खेह ॥३०॥
एक घड़ी, आधो घड़ी आधी हूँ से आध ।
कबीर संगत साधु की कटै कोटि अपराध ॥३१॥
कांटो से भी खराब है जिस गुल में बू न हो ।
विराने के मिशाल है जिस दिल में तू न हो ॥३२॥

॥ इति दिव्य सन्देश ॥

भक्त (अर्जुन) की प्रार्थना

अब सौंप दिया इस जीवन का
सब भार तुम्हारे हाथों में ।
है जीत तुम्हारे हाथों में
और हार तुम्हारे हाथों में ॥
मेरा निश्चय बस एक यही
[illegible]र तुम्हें पा जाऊँ मैं ।
अर्पण कर दूँ दुनियाभर का
सब प्यार तुम्हारे हाथों में ॥
जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ
ज्यों जल में कमलका फूल रहे
मेरे गुण और दोष समर्पित हों
करतार तुम्हारे हाथों में ।
यदि मानवका मुझे जन्म मिले
तो तव चरणों का पुजारी बनूं
इस पूजक की इक इक रग का
हो तार तुम्हारे हाथों में ॥
जब जब संसार का कैदी बनूं
निष्काम भावसे कर्म करूँ ।
फिर अन्त समय में प्राण तजूं
निराकार (साकार) तुम्हारे हाथों में ।
मुझ में तुझ में बस भेद यही
मैं नर हूँ तूं नारायण है ।
मैं हूँ संसार के हाथों में
संसार तुम्हारे हाथों में ॥